भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-15, अंक-10 सोमवार, 26 अक्टू.' 92	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी अक्तूबर, 1992	वार्षिक चन्दा-30.00 प्रति अंक : 3.00

अमृतसेतु

[हम सब के प्यारे प्रभु प.पू. काकाजी का अमृत महोत्सव (75वीं जन्म जयंती) का महामंगलकारी वर्ष–'1993' आ रहा है.... सर्व गुणातीत स्वरूपों की छत्र-छाया में दिल्ली में 3rd Feb. के दिन-वह अमृतपर्व मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा के साथ-साथ मनायेंगे। हमारे भाग्य का तो पार नहीं कि रोम-रोम में भगवान प्रकटाये परम पवित्र पुरूष गरजू बनकर हमारे जीवन में आ गये....हमें अपनी गोद दी और उनके संग जीवन जीये !!...कैसे ऋण चुका भी पायेंगे इनका?

पू. काकाजी के निम्नलिखित दो आंशिक पत्रों से ही स्पष्ट होता है कि हमें कैसी भव्य प्राप्ति हुई है....और इनके संबंध में आने के बाद हमें क्या करना है? और इससे भी अधिक–कैसी कल्पना से परे की प्रीति होगी। हम सबसे उनकी? कितना अपना माना होगा हमें–जो ऐसा सचोट व स्पष्ट मार्गदर्शन हमारे लिए खुला रख दिया कि आज भी यदि करने लग जायें तो परम सुखी हो जायें व देह रहते हुए अक्षरधाम का सुख-शांति, आनंद प्राप्त करें.....

आईये, हम सब मिलकर इस रहस्य का मनन चिंतन करके समझने का प्रयास करें। इन वाक्यों को अपने जीवन का आधार बना लें ताकि 'अमृत महोत्सव' तक में प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों हमारी सब कसर टाल कर हमारी साधना की पूर्णाहुति करा देवें....यही अंतर की आरजु.....]

❑ .....मुझे तो
पू.बापा ने अनुपम ही पसंदगी में चुना था,
सो,
सर्वांगी विकास में और सर्वोच्च ब्रह्मीस्थिति में
तकलीफें बाधारूप नहीं बनी
और
मूल रहस्यों गौण नहीं हुए–
अक्षरपुरुषोत्तम उपासना
व
जीव को ब्रह्मरूप करके परब्रह्म में जोड़ने के मूल उद्देश्य में सहज स्थिति व सिद्धि पू. बापा ने दे दी.....
जिससे
सभी भूमिकाओं में अखंड शांति और आनंद रहा....

स्वीट्जरलैंड, 15-7-'77

❑ गुरु बहुत होते हैं,
परन्तु
सद्गुरु कम।
और
सच्चा सद्गुरु तो शायद ही मिले
और
मिल भी जाये तो–
उसके जोग में रहना कठिन।
यदि रहें भी, तो–
अखंड दिव्यभाव रखना कठिन।
शब्द द्वारा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान का उपदेश करे वह गुरु।
सभी में परमात्मा का दर्शन कराये वह सद्गुरु।
वह भी रखें तो–
स्वभाव टाल कर टिकना कठिन।
वह भी कर लें तो–
उसकी अनुवृत्ति में रहना कठिन।
वह भी हो जाये, तो–
उसके अभिप्राय की भक्ति करनी कठिन।
और
वह भी हो, पर–
भिन्न-भिन्न प्रकार के–भिन्न रुचि वाले मुक्तों के साथ
दिव्यभाव ही रखकर–साधुता रखकर
सरल वर्तना–सर्वोत्तम स्थिति है।
और तब–
पूर्णता ही प्रगटे
और
Final stage सिद्ध हुई मानी जाये।
तो,
यह **एकता व समता** दृढ़ करते जाना।
दूसरा क्या कर रहा है?
वह
जरा भी नज़र में नहीं लेना।
हमें
प्रभु को याद करके
उन्हें ही सब करने देना है।

शिकागो, 12-5-'-'77

–प.पू. काकाजी महाराज

ब्रह्मप्रवाह

(अ) आत्मा, अक्षर और पुरुषोत्तम का सुख

कई जन्मों के पुण्य उदय होते हैं, तब मनुष्य जन्म मिलता है। पशुओं, राक्षसों, प्राणियों तथा अन्य योगियों के दुःख को जानने के बाद मानव यदि मानवता प्रगटाये तो इस लोक में आनन्द, सुख, सत्ता और स्वर्ग के सुख का अनुभव करके साक्षात् प्राप्ति करता है। किन्तु, आत्मा का और भगवान के परमपद का सर्वोपरि सुख प्राप्त करना बाकी रहता है। सत्संग करते-करते वच. वड़ताल-3 के मुताबिक सत्पुरुष मिले तब आत्मा का सच्चा स्वरूप समझ में आता है और निरन्तर प्रसंग रखने पर स्वस्वरूप की पहचान होती है।

अनेक साधन करते-करते जीवात्मा स्वधर्म, तप, नियम, योग सिद्ध करके आत्मनिष्ठा दृढ़ करके, मुक्तभाव का सुख भोगती है। परन्तु जैसे विपरीत देशकाल के कारण च्यवन, पराशर, नारदजी वगैरह ऋषि-मुनियों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई वैसे जिन्हें कच्ची ही आत्मनिष्ठा सिद्ध हुई होती है, उसे शाश्वत् सुख प्राप्त नहीं होता। हानि-वृद्धि, सुख-दुःख की भावनायें, हार-जीत के प्रहार तो मुमुक्षु सह लेता है व मान-अपमान में समबुद्धि रखकर दुःखी नहीं होता, परन्तु जन्म-मृत्युरूपी समुद्र तैरने उपासना की और साक्षात् सत्पुरुष या भगवान व उसके संत के आसरे की जरूरत तो रहती ही है। नदी तैरने आत्मनिष्ठा सहाय करती है और बाह्यरूप से सुख लगता है, पर भीतर की गहराई में देशकाल के कारण आते गुणों के वेग में मुक्तभाव खंडित हो जाता है और ब्रह्मसुषुप्ति में ही जीव निर्गमन करता रहता है। प्रकृति के बंधन बाधारूप होते हैं।

आत्मनिष्ठा की सीमा भक्तिनिष्ठा से लांघ सकते हैं। साक्षात् भगवान या उनके स्वरूपों की पहचान हो जाये—वे जैसे हैं वैसे समझें जायें तो निर्गुण-निष्काम मार्ग खुल्ला हो जाता है और ब्रह्मरूप होकर भगवान की निष्काम सेवा-भक्ति करने की सूझ मिल जाती है। आत्मनिष्ठा यदि दृढ़ हुई हो तो अक्षर के सुख का अनुभव हो पाता है। राग-द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर की लहरों में ही झूलते मन को मुमुक्षु काबू नहीं कर पाता। उसकी कल्पना टलती नहीं, शंका-अशंकायें रहा ही करती हैं। जैसे-जैसे सत्पुरुष के वचन और विश्वास व श्रद्धा से सत्संग दृढ़ होता जाता है, वैसे-वैसे नवधा भक्ति में से प्रगट की ही उपासना वाली प्रेमलक्षणा भक्ति उदय होती है और भगवान या वड़वानल अग्नि समान उनके सच्चे संत की दृष्टि से माहात्म्यज्ञान सहित असाधारण भक्ति सिद्ध होती है। संकल्पों का विराम होता है। सत्संग दिव्य समझा जाता है। किसी के प्रति भी अभाव, अवगुण, मलिन वासना नहीं होती; दृष्टि में ही नहीं आता। भीतर में अखंड अलौकिक सुख, आनन्द, आश्चर्य रहा करता है। महाराज की परात्परता महसूस हुआ करती है। शुभ ही संकल्प उठते हैं और ब्रह्म का साक्षात् दर्शन होकर, महाराज का साक्षात्कार दर्शन होता है। जीवात्मा में दृढ़ प्रतीति आती है। कृतकृत्यता अनुभव होती है। एकांतिक भक्त के लक्षणयुक्त वर्तकर अनन्य आसरा दृढ़ करके अनन्य भक्त बनता है। काल, कर्म, माया का भार रहता नहीं।

भगवान की अखंड स्मृति रहा करती वच. अमदाबाद–2-3, प्र.37 के मुताबिक उपासना दृढ़ होते निर्विकल्प स्थिति अनुभव होती है और देह रहते हुए उस सुख को भोग पाता है। वच. मध्य. 14, वड़ताल-1 और अंत्य. प्र.11 के मुताबिक सुख प्राप्त होता है। तब भी भगवान के सर्वोपरि सुख, अंतिम मुक्तभाव की आत्यंतिक सर्वोत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करनी बाकी रहती है। परब्रह्म को जैसा जानता है वैसा स्वयं बनता है और पुरुषोत्तम पर के पर ही रहते हैं। उत्तरोत्तर स्थान और स्थिति बदलते रहते हैं। ऐसा देह रहते हुए भी मध्य. 66 के आखिर पैरे के मुताबिक बन सकता है और वच. मध्य. 8 के मुताबिक ज्ञानयज्ञ का अंत ला सकते है व माया से साक्षात् निर्लिप्तता अनुभव कर सकते हैं।

शुद्ध गुणातीत ज्ञान की अंतिम कक्षा पर अपनी अक्षरपुरुषोत्तम की उपासना में हरेक सत्संगी ने भगवान रूप ही साक्षात् साकार मूर्तियों को दिव्य स्वरूपों समझकर ही नज़रों नजर देखी हुई है, जिसकी प्रतीति सद्गुरुवर्य भगतजी महाराज तथा पू. जागास्वामी तथा पू. कृष्णजी अदा तथा अन्य महा एकांतिक संतों द्वारा हमें हुई ही है। ऐसे ही रत्नों, चैतन्य मंदिर–महाएकांतिकों को तैयार करने हमारे गुरुवर्य पूज्य शास्त्रीजी महाराज ने भी खुले तरीके से शुरुआत करके सबके लिए साक्षात् गुणातीत ज्ञान का सर्वोपरि सर्वोत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करने का मार्ग खुल्ला कर दिया है। उसे तत्काल प्राप्त करने की जिसे इच्छा हो, तमन्ना हो–डूबते हुए व्यक्ति की तरह जरूरत व गरज हो और तीव्र श्रद्धा हो–तो हमारे पूज्य प्र.ब्र. योगीजी महाराज द्वारा वह भी मूर्तिमान हो सके ऐसा है। वच.सा.17, वड़., 17, प्र.64, अंत्य. प्र.2 वगैरह के मुताबिक पुरुषोत्तम के साधर्म्य को पा सकते हैं व महाराज पर के पर ही लगते हैं। स्वामी-सेवकभाव दृढ़ होता जाता है और परमपद अनुभव होता है। अक्षरधाम का साक्षात् सुख मिलता है। समागम करने पर अन्य को भी उतनी पल दृढ़ प्रतीति भी होती है, स्व का भाव टल जाता है। व्यापार व अन्य प्रवृत्तियाँ भी दूर रहती हैं। ब्रह्म की ही मूर्तियों के सिवा कुछ भी–सगे रिश्तेदार भी ध्यान में नहीं आते और समग्र सत्संग दिव्य ही लगता है। वच. अंत्य. प्र.2 के मुताबिक भगवान का सुख अनुभव होता है, भोगा जाता है और निरन्तर प्राप्त हुआ रहता है। जो धाम में हैं वही यहाँ लगते हैं। कल्पना टल जाती है। जीवात्मा ब्रह्मरूप में से ब्रह्मस्वरूप बनती है। इन्द्रियाँ–अन्तःकरण का तदाश्रित अनुभव पूर्ण ब्रह्मरूप से साक्षात् स्वरूप को ही पहुँचाता है। वच. लोया 7 तथा का. 7, पंचाला-7, प्र.27 के मुताबिक भगवान रूप ही गति होती है और अन्य को गुणातीत करके महाराज में जोड़ते हैं। भगवान अणुमात्र ऐसे संत से दूर नहीं रहते। उनके द्वारा महाराज अखंड दर्शन देते हैं, बातें करते हैं और धाम का सुख अन्य को दिखाकर उसे गुणातीत करके, एकांतिकभाव सिद्ध कराके, अक्षरधाम ही बक्षिश देते हैं व स्वयं पर के पर रहकर, अपार सुख, सत्ता, ऐश्वर्यों, प्रभा, तेजस्विता अनुभव करके महाराज को पर के पर, अमृत के समुद्र समान निहार कर स्वामी-सेवकभाव से सत्संग की ही सेवा, भक्ति में अखंड निमग्न रहते हैं।

–प.पू. काकाजी महाराज

जुलाई, 1953

❋ ❋ ❋ ❋

(ब) महामन्त्र :—

आंतरिक	सुहृद्भाव	वही	निष्कामभाव
,,	,,	,,	निर्दोषभाव दृढ़ कराये
,,	,,	,,	पराभक्ति
,,	,,	,,	एकांतिकभाव
,,	,,	,,	ब्रह्मरूपभाव
,,	,,	,,	ब्राह्मीस्थिति और निर्मानीभाव
,,	,,	,,	साधुताभरी सिद्धदशा

सो चाहे कुछ भी हो, साधुता से प्रारंभ करके समता-सरलता के लिए प्रायश्चितरूप प्रार्थना करना ही और दैवी गुणों—प्रेमभाव, सरलता व विनम्रता—सहज ही प्राप्त हो जाये इसलिए सुबह शाम—बिना नागा करे सुनृत (योगी गीता) की प्रार्थना और ''स्मरणयोग'' करने की आदत ही डाल देनी। किस पल वह हो जायेगा वह पता भी नहीं चलेगा। इसलिए इतना परिश्रम गरज रखकर पूर्ण रूप से करते रहना। साथ में रहकर दिव्यभाव रखना—वही बड़ी अड़चन है। कुछ न कुछ अहम् प्रगट हो जाये। सो, वच. मध्य 25 और अंत्य. 26 का पैरा हर रोज दो बारी याद कर ही लेना। अंतदृष्टि व प्रार्थना की आदत से साक्षीभाव व सुहृद्भाव ग्रुप में जहाँ हो—वहाँ सहज ही रहेगा। प्रभु ही सारा प्रबन्ध करते लगेंगे। आपको अंतर के शुभाशीष हैं....

—प.पू. काकाजी महाराज

1975

❑ ❑ ❑

'प.पू. काकाजी—मेरी निगाह से'

प.पू. काकाजी?
वे तो स्वामिनारायण भगवान की
शुद्ध गुरु परम्परा की पांचवी पीढ़ी के वारिसदारों में से
एक और अद्वितीय, विलक्षण, साहसिक, निडर,
व
पहचानने मुश्किल
और
चर्मचक्षुओं से यदि देखें तो वे बाह्यवृत्ति युक्त
भी दिखाई पड़े—
परन्तु प्रभु में—गुरुहरि योगीजी महाराज में ही
अखंड संलग्न थे वे।
उनका एक ही उद्यम—जीवन की अंतिम सांस तक !

संबंध में जो भी आये उसे
प्रगट प्रभु की तत्त्व से पहचान करा कर, प्रभु देने.....
और वह भी
उसके पास यतकिंचित् थोड़ी भी साधना करा कर?
अरे ! नहीं–
बिना किसी साधन करवाये–बक्षीश में

महाराज द्वारा हमें दिया
एक अनमोल मौका थे वे–
और सचमुच
जिस-जिसने उनका सम्पूर्ण भरोसा रखा,
उनकी सभी क्रियाएँ जँचाई
और
उनमें अखंड दिव्यभाव रखा
वे सभी
बिना कोई साधन करे
भुक्ति, मुक्ति और शक्ति को पाये !
प्रभु की मूर्ति लुटाने ही आये
अक्षरधाम के इस शाही सौदागर ने
इन सभी को न्याल कर दिये !

–पू. गुरुजी, दिल्ली

❑ ❑ ❑

My Gurudev Kakajee was visible Likeness of invisible God. He was really genious Supreme Master and innovative in spiritual history. Though he was my Guru, He was my friendly God....and so with everybody. He treaded hither to unknown spiritual paths and brought about revolutionary and dyanmic truths, which I am sure, shall enlighten and encourage thousands of truth seekers of future generations.

.....He radiated foresights and frankness, courage and conviction, love and compassion to all, at all the times. He always believed and preached unfliching faith and reverence ot Lord Swaminarayan and his spiritual disciplic successors in the most trying and adverse situations in life, for, he was a believer unparalleled and a Master par Excellence.

In Short,

He was a whole some Spiritual Divine Personality.

—P. Mahendra Bapu

Tardeo

स्वामी की बातें

249. भगवान का सुख नहीं आता उसका क्या कारण है? तब बोले कि–उसे विषय अपनी पकड़ में लिये रहते हैं। प्र–4,125

250. भगवान कितने मुश्किल हैं, वैसे ही ये साधु मिलने मुश्किल हैं और वैसे ही विषय छोड़ने मुश्किल हैं। प्र–4,126

251. बरसात सुखदायी है, परन्तु जिसके घर में पानी भर जाता हो, उसे दुःखदायी है और कालरूप है व बड़े जीव को सुखरूप है और छोटे जीव को दुःखरूप है। प्र–4,127

252. संग का फर्क इस प्रकार है कि जो सौ जन्म में एकांतिक होने वाला हो वह आज हो जाये और इस जन्म में एकांतिक हो उसे भी सौ जन्म लेने पड़े। ये दो फर्क हैं। वहाँ उदाहरण दिया कि लकड़ी और पानी एक दूसरे को तारें भी और डुबायें भी। प्र–4,128

253. हरेक बात में–बोलने में, क्रिया में जो सूझ आये, वह महाराज की 'प्रेरणा' समझनी। प्र–4,128

254. भगवान की मूर्ति, भगवान के साधु और भगवान की आज्ञा इन तीनों बातों में ही माल है। ऐसा और किसी बात में माल नहीं है। ज्ञान, वैराग्य व धर्म, वे तो कुदाली, फावड़ा, दराँती की जगह पर हैं। प्र–4,130

255. भगवान अँधेरे में बैठे हों और हमारे वहाँ जाने पर हमारे उजाले से भगवान का दर्शन हो, तब भी यूँ समझना कि यह सब कुछ उनकी ही देन है। इसका नाम समझदारी कहा जाये। यह बात समझना। प्र–4,131

256. भगवान को यदि रोटी देनी होगी तो आकाश में से भी देंगे, यदि नहीं देनी होगी, तो घर में होते हुए भी जल जायेगी। प्र–4,132

257. नौटंकी करने वाला भेष निकालता है; उसे जो मूर्ख है, वह स्त्री रूप में देखता है और जो समझदार है वह पुरुष जानता है। इसी प्रकार जगत खोटा है। प्र–4,133

258. निर्वासनिक संत के साथ लगाव हुआ हो तो वह उसे धक्के मारकर भी ले जाता है। लेकिन सर्वासनिक को कैसे पता चले कि मुझे लगाव हुआ है? तब बोले कि–संत की आज्ञा से या प्रारब्धवश यदि दूर रहना पड़े, तब भी उनके पास रहा करने की लगन रहा करे और धक्के क्या ? तो–उसके 'विषय' का अनेक प्रकार से खंडन कर डाले। प्र–4,134

259. शांत व्यक्ति में काम व अभिमान रहता है और तेज व्यक्ति में मान रहता है। प्र–4,135

260. वचनामृत से अधिक अन्य किसी में माल माना जाये, वही मोह जानना। प्र–4,136

261. भगवान मिलने पर भी शायद कुछ कसर रह जाये, परन्तु ये साधु मिल जाये तो कोई कसर रहने नहीं देंगे। प्र–4,137

262. कामादिक दोष तो जैसे जैसे भगवान की आज्ञा में रहेंगे वैसे वैसे में पड़ जायेंगे, परन्तु बीज रूप से तो रहते हैं। वह तो सत्पुरुष की कृपा दृष्टि हो तब वह बीज नष्ट होता है और सत्पुरुष की दृष्टि तो गुण व सेवा से ही पड़ती है। प्र–4,138

263. महाराज ने वासना टालने की बातें करी तब शुकमुनि ने कहा कि आप मिले तो फिर वासना का क्या भार है ? तब महाराज ने कहा कि मैं मिला हूँ सो तुम्हारी रक्षा तो करूँगा, पर जब तक वासना रहेगी तब तक तुम्हारी घबराहट जायेगी नहीं—सो निर्वासनिक होना। वहाँ दृष्टाँत दिया कि—कोई सोया हो व उसके ऊपर सर्प चढ़ जाये और अन्य कोई करीब होगा, वह उसकी रक्षा तो करेगा परन्तु उस सोनेवाले की घबराहट जायेगी नहीं। यूँ तुम्हारी रक्षा तो मैं करूँगा पर वासना होगी तब तक तुम्हारी घबराहट मिटेगी नहीं, सो निर्वासनिक रहना।

प्र—4,139

264. भगवान के भक्त की महिमा-गुण गाते रहना; उससे जीव ब्रह्मरूप हो जाता है और उसमें कुछ परिश्रम भी नही। यह करने को कहा है परन्तु फलां ऐसा व फलां वैसा यूँ भगवान के भक्त के दोष नहीं कहने चाहिए और वह करना भी क्यों ? यदि किसी को फिलहाल नहीं समझ में आता होगा, तो आगे जाकर समझ में आयेगा। उसकी क्या जल्दी है? और वह भागकर भी कहाँ जायेगा ? परन्तु किसी के दोष नहीं कहने चाहिए....प्र-4,140

265. .....देह है सो विषय तो भोगने पड़े परन्तु अनादर से भोगने चाहिए, आसक्ति से नहीं भोगने चाहिए और अभी तो महाराज के प्रगट बैठे होने पर जैसा समाधान व भजन हो, वैसा ही समास व भजन हो रहा है। प्र—4,141

266. .....यदि भगवान का माहात्म्य हो व साधु का संग हो तो विषय की पकड़ में फंस नहीं पाये और उससे बचकर निकल तो जायें, परन्तु सांख्य द्वारा निषेध करे बिना जड़ से नष्ट नहीं होता। प्र—4,142

❑ ❑ ❑

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	6.11.92	शुक्रवार	प्रबोधिनी एकादशी, व्रत
2.	दि.	10.11.92	मंगलवार	कार्तिकी पूर्णिमा
3.	दि.	20.11.92	शुक्रवार	एकादशी, व्रत

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashok vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7249327
Printed at Kamal Printers, IX/5866, Gandhi Nagar, Delhi-110 031